चाचा श्रीहित वृन्दावनदास जी कृत

करुणा-बेली

(सानुवाद)

अनुवादक: डॉ० श्याम बिहारी लाल खण्डेलवाल

प्रकाशन तिथि :
आश्विन शुक्ला- १५, वि.सं.२०७७
शरद पूर्णिमा
श्रीहित ध्रुवदास जी की जयन्ती
मुद्रक:
श्रीजी विद्या मन्दिर, मथुरा
मो. 8126162336

प्राप्ति स्थल:
श्रीराधा खण्डेलवाल ग्रन्थालय
राधा मोहन अलि कुंज के नीचे,
अठखम्भा बाजार, वृन्दावन-281121
जिला-मथुरा (उ० प्र०)
फोन : 0565-2443101

✷ प्रथम संस्करण
✷ न्यौछावर—मात्र 30 रुपये

करुणा-बेली

श्रीव्याससुवन करुना अब करौ । मो सिर चारु चरन-रज धरौ॥
श्रीहितरूप कृपा की आसा । जाँचत उर धरि बड़ौ हुलासा॥

हे व्यासनन्दन श्रीहितहरिवंशचन्द्रजू! अब आप मुझ पर अपनी करुणा से भरी सुन्दर दृष्टि प्रदान करें तथा मुझे सद्बुद्धि प्रदान करने के लिये अपने चारु चरणों की परम पावन रज मेरे मस्तक पर रखने की कृपा करें। परात्पर तत्व 'हित' के साक्षात् स्वरूप मेरे गुरुवर्य गो. श्रीहितरूपलालजी महाराज की कृपा मुझे निश्चित रूप से प्राप्त होगी- ऐसी मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है। इसी मधुरिम आशा के कारण मेरा हृदय अत्यधिक प्रफुल्लित हो रहा है और मैं उनसे बार-बार उनकी कृपा प्राप्त करने की याचना कर रहा हूँ।

करुनानिधि तुव नाम कहावै । मो सौ दीन चरन-रति पावै॥
प्रथम करौ करुना गुरुराज । जिनकौं सरन गहैं की लाज॥

सभी लोग कहते हैं कि सद्गुरु के हृदय में करुणा का सागर भरा हुआ होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण

तो यही है कि मुझ जैसे असहाय, असमर्थ एवं अभावग्रस्त को भी उन्होंने अपने श्री चरणों की शरण प्रदान कर दी है। वस्तुत: सद्गुरु ही प्रथमत: करुणा किया करते हैं, क्योंकि यदि वे अपने चरणों की शरण में आये हुए व्यक्ति का कल्याण नहीं कर पाते, तो उन्हें स्वयं में अत्यन्त लज्जा का अनुभव होता है।

पुनि जे रसिक सु दृष्टि निहारौ । मोपै करुना सदा विचारौ॥
करुना-दया साधु-गुरु करिहैं । मो उर-ताप-तिमिर सब हरिहैं॥

गुरुवर की कृपा प्राप्त होने के साथ-साथ रसिकजनों की कृपा भी परम आवश्यक है, अत: मैं उनकी करुणा भरी सुन्दर दृष्टि की निरन्तर अभिलाषा करता हूँ। जब गुरुवर एवं साधुजन दया करके अपनी करुणा भरी दृष्टि मुझ पर डालेंगे, तब मेरे हृदय का कष्ट और अन्धकार दूर हो जायेंगे।

श्रीगुरु-साधु जाहि अपनावैं । तेई जन हरि के मन भावैं॥
जिनकौ विरद विदित जग माँहीं । अभय करैं पकरैं जा बाँहीं॥

सद्गुरुदेव एवं साधुजन जिन्हें अपना बना लेते हैं, श्रीहरि को भी वे ही लोग परम प्रिय लगते हैं। सम्पूर्ण संसार में श्रीहरि का सुयश गान करते हुए यह बात अत्यन्त रूप से प्रसिद्ध है कि वे जिनकी भुजाओं को पकड़ लेते हैं, उनकी समस्त शंकाओं का समूल उन्मूलन कर उन्हें निर्भय बना देते हैं।

हे करुनानिधि ! करुना कीजै । अब निजु सरन रावरी दीजै॥
ऐसी सदा विचारौं चितही । हौं तव कृपा मनावत नितही॥

हे करुणानिधि ! अब आप करुणा से भरी हुई अपनी सुन्दर दृष्टि मेरे ऊपर भी डालने की कृपा करें और मुझे अपने श्रीचरणों की शरण में लेने की अहेतुकी अनुकम्पा करें। मैं अपने हृदय में सदैव आपकी कृपा- प्राप्ति की अभिलाषा ही नहीं किया करता हूँ, उसे प्राप्त करने के लिये नित्यप्रति लालस-मानस भी बना हुआ हूँ।

विनती सुनौ साधु-मन-रंजन । तुव पद-कमल सकल दुख गंजन॥
अहो नाथ ! तुम दीनदयाला । अपने कौं कीजै प्रतिपाला॥

साधुजनों के मन को आनन्द के रंग में रँग देने वाले हे प्रभु ! आप मेरी प्रार्थना को ध्यान से सुनने की कृपा करें। आपके कमल के समान कोमल श्रीचरण समस्त दु:खों का विनाश करने वाले हैं। हे नाथ ! आप असहाय, असमर्थ, अभावग्रस्त एवं संकटों से घिरे हुए लोगों पर दया करने वाले हो तथा उन्हें अपना बनाकर उनका पालन-पोषण एवं उन्हें अपना स्नेहपूर्ण संरक्षण प्रदान करने वाले हो, अत: आप मुझ पर भी ऐसी ही कृपा करें।

मो करनी नहिं चित में धरिये। अपनी कृपा ओर ही ढरिये॥
जो मम औगुन ग्रहन करौगे। अपनौं विरद आपु बिसरौगे॥

हे प्रभु! आप मेरे द्वारा किये गये दुष्कर्मों को अपने हृदय में स्थान न देते हुए, अपने सहज कृपा करने के स्वभाव पर ही अडिग बने रहें। यदि आप मेरे अवगुणों की ओर अपने ध्यान को केन्द्रित करोगे, तो आप अपने सुयश को स्वयं ही भूल जाओगे।

करुनामय यह विरद बढ़ावौ। जो हमसे दीननि अपनावौ॥
अहो कृष्ण! पद-रति अब पाऊँ। जुगल-केलि कल कीरति गाऊँ॥

हे करुणामूर्त्ति! अतः आपसे मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि आप मुझ जैसे दीनजनों को अपनाने का कार्य करते हैं, तो इससे आपकी कीर्त्ति की गाथा विस्तार को ही प्राप्त होगी। हे कृष्ण! अब आप मुझे अपने श्रीचरणों के प्रति अनन्य प्रीति का वरदान प्रदान करें, जिससे कि मैं आपकी और आपकी प्रियतमा स्वामिनी श्रीराधिकाजी की प्रेम-रस से ओतप्रोत केलियों की कल-कीर्त्ति का गान करने में पूर्ण रूप से समर्थ सिद्ध हो सकूँ।

देहु कृष्ण! यह भक्ति-सुधन है। तुव दासन कैं हिय दृढ़पन है॥

भक्तनि की अभिलाषा दाइक । हो राधापति ! तुम सब लाइक॥

हे कृष्ण ! आपकी भक्ति ही परम धन है। यही कारण है कि आपके सेवकों का हृदय अत्यन्त दृढ़ता के साथ आपकी भक्ति रूपी परम धन को प्राप्त करने के लिये सदैव लालस-मानस बना रहता है। आप तो भक्तों के मन की अभिलाषाओं को पूर्ण करके सदैव उन्हें सुख प्रदान करते रहते हो। हे श्रीराधाबल्लभलाल ! आप सभी प्रकार से पूर्ण समर्थ हो।

देहु-देहु करुना करि पद-रति । तुम समान को त्रिभुवन में पति॥
हे ब्रज-ईश ! सीस दीजै पद । तुम हौ परम दया-करुना-हद॥

अतः आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरे ऊपर अपनी करुणा भरी दृष्टि डालते हुए मुझे अपने श्रीचरणों का परम अनुरागी बना दें। तीनों लोकों में आपके समान अन्य कोई भी नहीं है, जो अपनी प्रतिज्ञा पर अटल बना रहे। हे ब्रजेश ! आप तो परम दयालु हो, आपके हृदय में करुणा कूट-कूट कर भरी हुई है, अतः आप मेरे शीश पर अपने श्रीचरणों को स्थापित करने की कृपा करें।

करौ अनुग्रह अपने जन कौं । जैसैं गऊ चहत बच्छन कौं॥
यौं हरि देहु भक्ति-वरदानैं । जा कीरति कौं जगत वखानैं॥

आपको अपने आत्मीयजनों पर ठीक उसी प्रकार कृपा करनी चाहिये, जिस प्रकार एक गाय अपने बछड़े को अतिशय लाड़-प्यार के साथ दुलराती है। हे हरि! इसी प्रकार आप भी मुझे अपनी उस भक्ति का वरदान प्रदान करें, जिसकी महिमा का व्याख्यान सम्पूर्ण जगत् करता रहता है।

हे गोकुल-विधु ! वदन दिखावौ । नैंन-चकोरनि सुधा पिवावौ॥
निरखि सुफल ह्वै हैं दृग मेरे । पावन गुन गाऊँ हौं तेरे॥

हे गोकुल चन्द्रमा! आप मुझे अपने श्रीमुख के दर्शन करायें, क्योंकि मेरे नेत्र रूपी चकोर अमृत-पान करने के लिये अतिशय लालायित हो रहे हैं। जब मेरे नेत्रों को आपके शुभ दर्शनों का अलभ्य लाभ संप्राप्त होगा, तब वे अपने आपको धन्यातिधन्य अनुभव करेंगे और मैं आपके परम पवित्र यश का गुण-गान करने लगूँगा।

अहो-अहो त्रिभुवन के स्वामी । तुम हौ सबके अन्तरजामी॥
यातैं अपनी ओर निहारौ । मेरौ दोष न चित में धारौ॥

हे प्रभु! आप तो तीनों लोकों का पालन-पोषण एवं संरक्षण करने वाले हो और सबके मन की अच्छी-बुरी सभी बातों को जानने वाले हो, अतः आप मेरे दुर्गुणों पर ध्यान न देते हुए, अपनी कृपा करने की प्रतिज्ञा का पालन दृढ़तापूर्वक करें।

मिलन-आस की बेलि निपाई । ऐसी करौ जु अफल न जाई॥
तुव पद-दरसन पूरन फल है । दै सतसंगति सींचत जल है॥

हे प्रभु ! मेरे हृदय में आपसे मिलने की आशा रूपी बेलि प्रस्फुटित हो चुकी है, अतः आप तो कुछ ऐसा करो, जिससे कि वह फलीभूत होने से वंचित न रह जाय। चूँकि आपके श्रीचरणों के दर्शन का लाभ प्राप्त होना ही उसका पूर्ण रूप से फलीभूत होना है, अतः आप उसे सत्संगति रूपी जल से सींचते रहने का बानिक बनाने की कृपा करें।

यह अभिलाष रहत मन नित है । प्राननाथ ! मम आरति चित है॥
तुम समरथ हौं दीन महाई । सरन गहैं की तुम्हैं बड़ाई॥

मेरे मन में आपसे मिलने की अभिलाषा नित्यप्रति वृद्धि को प्राप्त होती जा रही है, किन्तु हे प्राणनाथ ! ऐसा न होने के कारण मेरा हृदय अत्यन्त दुःखी है। आप तो परम सामर्थ्यवान हो और मैं अत्यन्त असहाय एवं असमर्थ हूँ, अतः यदि आप मुझे अपने श्रीचरणों की शरण प्रदान करते हैं, तो आपकी कीर्त्ति और अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जायगी।

हो ब्रज-दूलह ! नन्द - दुलारे । कब ऐहौ दृग आगैं प्यारे॥

नहिं जानौं किहि छिन दरसौगे । तपत हियैं कब सुख बरसौगे ॥

हे ब्रजदूलह ! हे नन्ददुलारे ! हे प्यारे ! आप मेरे नेत्रों के समक्ष कब प्रगट होगे ? मैं यह भी नहीं जानता कि ऐसा क्षण मेरे जीवन में कब आयेगा, जब आप मेरे दु:खित हृदय पर सुख की वर्षा करके मुझे आनन्द प्रदान करोगे ?

कानन सघन वीथियन माँहीं । निरखौं प्रिया-अंश गरवाहीं ॥
पूरित नेह-वचन सुनिहौं जब । श्रवन-लाभ फल गनिहौं हरि! तब ॥

हे हरि ! ऐसा कब होगा, जब मैं आपको एवं आपकी प्रियतमा स्वामिनी श्रीराधिकाजी को एक दूसरे के कंधों में अपनी भुजाओं को रखे हुए श्रीवृन्दावन की सघन वीथियों में विचरण करते हुए देखने का सुअवसर प्राप्त करूँगा ? जब मुझे आप दोनों के मध्य होने वाली प्रेम-रस से भरी हुई वार्त्ता को सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा, तब मेरे कान अलभ्य लाभ रूपी फल को प्राप्त होने की अनुभूति करेंगे।

हो वृन्दावनचन्द्र ! विनोदी । देहु दान हौं ओटौं गोदी ॥
बात तुम्हारी जीवन मेरी । सब विधि पूजौ आस सबेरी ॥

हे वृन्दावनचन्द्र ! आप तो सदैव प्रेम-रस से भरे लीला-विलासों को करने में संलग्न बने रहते हो।

मुझे भी उनके दर्शन के आनन्द का दान प्रदान करें, मैं अपने आँचल को पसारकर आपसे यही याचना करता हूँ। आपकी प्रेम-रस-आनन्द से संयुक्त बातें मेरी प्राण संजीवनी हैं, अत: आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरी सम्पूर्ण आशाओं को सभी प्रकार से पूर्ण करने की कृपा करें।

परम दया के मन्दिर तुमहीं। यातैं सरन गहत हैं हमहीं॥
राखौ नाथ! आपने नेरैं। अहो कृपा-निधि! हम नित टेरैं॥

हे प्रभु! आप तो दया के मूर्त्तिमान विग्रह ही हो, इसी कारण से हम आपके श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण करना चाहते हैं। हे नाथ! आप हमें अपने सानिध्य रूपी छत्र-छाया में रखने की कृपा करें। हे कृपानिधि! हम यही याचना करते हुए आपको सदैव पुकारते रहते हैं।

तुम गुन गहर कमल-दल-लोचन। अपने जन के सब दुख-मोचन॥
हे सुन्दरवर! तुम हौ नगधर। दीजै अभयदान सिर कर वर॥

हे प्रभु! आप तो सर्वगुणसम्पन्न हो, अर्थात् गुणों के भंडार हो। आपके नेत्र कमल की पंखुड़ियों के समान अत्यन्त कोमल हैं। आप जिन्हें अपना बना लेते हो अथवा मान लेते हो, उनके समस्त दु:खों का निवारण कर देते हो। हे सुन्दरवर! आप गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले हो। आप अपने श्रेष्ठ हाथों

करुणा बेली

को मेरे सिर के ऊपर रखकर मुझे अभयदान प्रदान करें, अर्थात् मुझे सभी प्रकार की शंकाओं एवं चिन्ताओं से मुक्त करने की कृपा करें।

सुनौ कान दै विनती हो हरि। तुमहिं सुनाऊँ बहुत भाँति करि॥
अपने की सुधि आपु न लीजै। ऐसी कहा निठुरता कीजै॥

हे हरि! आप मेरी प्रार्थना कान खोलकर सुनने की कृपा करें। मैं अपने निवेदन को अनेकों प्रकार से आपको सुनाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, किन्तु जिन्होंने आपको सब कुछ समर्पित कर आपसे आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, आप उनके कल्याण की कोई बात उनसे न करके उनकी उपेक्षा कर रहे हो, आपने उनके प्रति इतनी कठोरता क्यों धारण कर रखी है?

और बात नहिं चितहि विचारौ। कृपा-दृष्टि मम ओर निहारौ॥
इहिं विधि नाथ! तुम्हारौ जस है। जो बिसरौ तौ कहा मम बस है॥

हे प्रभु! आपको अपने चित्त से मेरे दोषों, गुण-अवगुणों, अच्छे-बुरे कर्मों आदि अन्य बातों का विचार करना छोड़ देना चाहिये तथा अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए मुझे अपनी कृपा से भरी नजरों से देखना चाहिये। ऐसा करने से आपकी कीर्त्ति में वृद्धि ही होगी, किन्तु यदि आप ऐसा न करके अपनी प्रतिज्ञा

को भूल जाते हैं, तो मैं आपको अपनी प्रतिज्ञा–पालन के लिये विवश तो नहीं कर सकता, क्योंकि आप मेरे अधीन थोड़े ही हैं।

अहो कृष्ण! जो दास कहावै। सो क्यौं जगत माँहिं दुख पावै॥
यह तौ बड़ी त्रास आवत है। कृपा–अवधि क्यौं तोहि भावत है॥

अहो कृष्ण! जिसने स्वयं को सर्वात्मभावेन आपके श्रीचरणों में समर्पित कर दिया है और आपका अनन्य सेवक बन गया है, फिर भी यदि वह इस संसार में अनेकानेक कष्टों को भोग रहा है, यह तो अत्यन्त दु:ख की बात है। आप तो कृपामूर्त्ति हो, फिर भी आप उसके दु:खों का निवारण क्यों नहीं कर रहे हो? उसे दु:खों में तड़पते हुए देखना आपको कैसे अच्छा लग रहा है?

कबहुँ न करौ दयाल ऐसी अब। चाहत सरन तुम्हारी हम सब॥
अपने जन की लज्जा गहिवैं। बहुत न आवत है प्रभु! कहिवैं॥

हे प्रभु! आप तो परम दयालु हो, अत: अब आप इस प्रकार का व्यवहार कभी भी नहीं करें। हम सभी तो आपके श्रीचरणों का सुखद आश्रय प्राप्त करना चाहते हैं। आपको तो अपने आत्मीयजनों की लाज बचाने का कार्य करना चाहिये। इससे अधिक मैं आपसे और क्या कह सकता हूँ।

करुणा बेली

जाकौ अनुग सो न सुधि लेही । वह न कहावै नाथ ! सनेही॥
अगनित द्वन्द देह के पथ हैं । तुम बिनु टारनि को समरथ है॥

हे नाथ! यदि कोई व्यक्ति किसी का अनुगामी अर्थात् सेवक बन गया है, किन्तु वह उस सेवक के दोषों, विकारों आदि का समूल उन्मूलन कर अथवा उनमें परिवर्तन लाकर उसमें सुधार लाने का कार्य नहीं करता, तो उसे किस प्रकार से उसका हित चाहने वाला कहा जा सकता है? इस मानव शरीर को पाकर भी व्यक्ति अनेक प्रकार के विरोधाभासी झगड़े-झाँसों में फँसा हुआ है। उसे इन झंझटों से मुक्त करने की सामर्थ्य आपके अतिरिक्त भला क्या किसी और के पास है?

बार-बार हरि! हम यह जाँचैं । तुव पद छाँड़ि अनत नहिं राचैं॥
ऐसी सुमति देहु करुना-निधि । कहौ प्रानपति! मिलिहौ किहि विधि॥

हे हरि! हम तो बार-बार आपसे यही याचना करते हैं कि आपके श्रीचरणों का परम सुखद आश्रय छोड़कर हमें कहीं भी परम शान्ति का अनुभव न हो। हे करुणानिधि! आप तो हमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें तथा हे प्राणनाथ! आप हमें वह युक्ति सुझायें, जिससे कि हमें आपका साक्षात्कार प्राप्त हो सके।

कब उपजैगी यह मन माँहीं । राखौगे मोहि चरननि-छाँहीं॥

मैं तो निहचै यही करी है । तुम धौं जिय में कहा धरी है॥

हे प्रभु! मेरे मन में आपके दर्शनों की लोल-लालसा कब उत्पन्न होगी तथा आप मुझे अपने श्रीचरणों की छत्र-छाया में रखने का सुअवसर कब प्रदान करोगे? मैंने तो अपने मन में आपका चरणाश्रय प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, किन्तु मुझे नहीं मालूम कि आप अपने मन में क्या कुछ सोच रहे हो, अर्थात् आप मेरे मन की अभिलाषा को पूरा करने की कृपा करोगे भी अथवा नहीं और यदि करोगे तो कब तक?

खोटौ-खरौ परौ जो सरनी । कहा देखिवैं ताकी करनी॥
विरद तुम्हारौ विदित रसाला । अब तौ करैं बनैं प्रतिपाला॥

हे प्रभु! एक प्राणी, चाहे वह सच्चे व शुद्ध हृदय वाला है अथवा नहीं, यदि उसने आपका चरणाश्रय ग्रहण कर लिया है, तो फिर उसके कर्मों के विषय में सोचना व्यर्थ है, निरर्थक है, क्योंकि सम्पूर्ण लोकों में यह बात अत्यन्त रूप से विख्यात है कि आप शरण में आये हुए को अपना स्नेह सानिध्य निश्चित रूप से प्रदान करते हो, उसे कभी निराश नहीं करते हो। अब तो अपने शरणागतों का पालन-पोषण एवं संरक्षण करने पर ही आपकी कीर्ति कलंकित होने से बची रह सकती है, अन्यथा तो आप अपयश के भागी बन जाओगे।

कब ऐहौ इन नैंननि आगैं । कब ये रूप तिहारे पागैं॥
कब राधापति तुव पद दरसौं । सुजस रावरौ गावत सरसौं॥

हे प्रभु! आप मेरी आँखों के सामने कब प्रगट होगे और मेरी ये आँखें कब आपके अति सौन्दर्यशाली रूप की दीवानी हो जायेंगी? हे श्रीराधाबल्लभलाल! मुझे आपके श्रीचरणों के दर्शन कब प्राप्त होंगे और मैं कब आपके सुयश का गान करते हुए प्रेम-रस में प्रमत्त रहने लगूँगा?

हे अभिराम श्याम! वन-वासी। कब परसौं वे पद सुख-रासी॥
अब उर आशा अधिक भई है । तुम धौं मन में कहा ठई है॥

हे श्यामसुन्दर! अपनी उत्कृष्टता एवं सुन्दरता के कारण आप मेरे मन को रमाने वाले हो, आनन्द प्रदान करने वाले हो तथा प्रेम-धाम श्रीवृन्दावन में नित्य निवास करने वाले हो। मुझे आपके श्रीचरणों का सांस्पर्श करने का सुअवसर कब प्राप्त होगा? मेरे मन में आपका साक्षात्कार प्राप्त करने की लोल-लालसा अधिकाधिक रूप से वृद्धि को प्राप्त हो रही है, किन्तु न जाने आपने अपने मन में क्या निश्चय कर लिया है, जिसके कारण आप मुझे अपने दर्शन नहीं दे रहे हो?

देहु न नाथ! अनाकनी मोसौं । अपनी विथा सुनाई तोसौं॥

भली लगै सो करिहौ ब्रजपति । मेरैं तो तुमही हौ हरि ! गति ॥

हे नाथ ! मैंने तो अपनी हार्दिक वेदना अत्यन्त आर्त्त स्वर में आपको सुना दी है, किन्तु मेरी विनम्र प्रार्थना को सुनकर भी आप उसे अनसुना अर्थात् न सुने जाने जैसा बर्त्ताव मुझसे क्यों कर रहे हो ? हे ब्रजपति ! आपको जैसा उचित लगे, आप वैसा ही करें, किन्तु हे हरि ! मैं तो आपको स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि आप ही मेरे जीवन सर्वस्व हो, मेरे जीवन के सहारे हो, मैं आप पर पूर्ण रूप से आश्रित हूँ।

अहो जुगल-विधु ! मो दृग भूषन । कब सींचौगे प्रेम-पियूषन ॥
कौतुक मिथुन सकल छबि-ऐंना । वन घन रमत निहारौं नैंना ॥

अहो युगलवर ! आप दोनों चन्द्रमा के समान अन्धकार को दूरकर प्रकाश प्रदान करने वाले हो, शीतलता प्रदान करने वाले हो तथा अमृत की वर्षा करने वाले हो, यही कारण है मेरे नेत्र आपको प्राप्त करने के लिये ठीक उसी प्रकार से अतिशय लालायित हो रहे हैं, जिस प्रकार एक व्यक्ति स्वयं को आभूषणों से सुसज्जित करने के लिये अत्यन्त प्रयत्नशील बना रहता है। आप अपने प्रेमामृत की वर्षा करके मेरे हृदय को कब शीतलता प्रदान करोगे ? हे लीलाप्रिय अद्वय युगल ! आप शोभा-धाम हो, सौन्दर्य निधान हो। मेरी उत्कट अभिलाषा है कि मैं श्रीवृन्दावन की सघन वीथियों में विचरण करते हुए आप दोनों के दर्शन-लाभ से लाभान्वित होने का सुअवसर प्राप्त करूँ।

निभृत निकुंज तैं निकसौ जब ही । मेरी दृष्टि परौगे तब ही॥
कब ह्वैहै वह मंगल बिरियाँ । आवत जुगल अंश भुज धरियाँ॥

मैं सोचता हूँ कि प्रातःकाल के समय जब आप निभृत निकुंज मन्दिर से वन-विहार के लिये बाहर निकलेंगे, उसी समय मुझे आपके शुभ दर्शनों का लाभ संप्राप्त हो सकता है, किन्तु वह मंगलमय बेला कब आयेगी, जब आप दोनों एक दूसरे के कंधों पर अपनी भुजाओं को रखे हुए वन-विहार के लिये प्रस्थान करोगे? इसके विषय में मैं क्या कह सकता हूँ?

अब कछु कहत परस्पर वानी । सो तौ परम नेह-रस सानी॥
ताहि सुनत बदलै गति तन की । पूजै अभिलाषा सब मन की॥

जब आप प्रभातकालीन वन-विहार के लिये निकलेंगे, तब रास्ते में आप दोनों के मध्य प्रेम-रस से भरी हुई बातें भी अवश्य होंगी। यदि मुझे उन बातों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय, तो मैं रसानन्द में ऐसा मगन हो जाऊँगा कि मुझे अपने शरीर की सुध-बुध भी विस्मृत हो जायेगी तथा मेरी समस्त कामनाओं की सम्पूर्त्ति हो जायेगी।

हे सुख-रासि! दास्य अब पाऊँ। हे प्रभु तुव पद कृपा मनाऊँ॥
कानन कमनी केलि विलोकौं। निरखत पलक-धरनि गति रोकौं॥

हे सुखराशि! यदि अब मुझे आपकी सेवा का सुअवसर प्राप्त हो जाय, तो हे प्रभु! मैं इसे आपके श्रीचरणों की महत् अनुकम्पा ही समझूँगा और तब तो मैं श्रीवृन्दावन में आप दोनों की कमनीय केलि अर्थात् अनादि-अनन्त काल से होने वाले नित्यविहार का दर्शन-लाभ प्राप्त करने का अधिकारी बन जाऊँगा तथा उस केलि दर्शन में ऐसा प्रमत्त हो जाऊँगा कि अपनी पलकों को झपकाने का ध्यान भी मुझे नहीं रह जायगा।

ऐसौ बानिक बनिहै कबहूँ। करुनामय ! विनती सुनि अबहूँ॥
अति अभिराम श्याम सुख-दाता। तुम पतितनि-पावन विख्याता॥

हे प्रभु! क्या कभी ऐसा सुन्दर संयोग मुझे इस जीवन में प्राप्त हो पायेगा ? हे करुणानिधान! अब तो आप मेरी विनम्र प्रार्थना पर अपना ध्यान आकर्षित करने की कृपा करें। हे श्यामसुन्दर! आपकी उत्कृष्टता एवं सुन्दरता ने मेरे मन को मोहित कर लिया है। आप सभी को परम सुख प्रदान करने वाले हो। आप धार्मिक प्रथाओं, विश्वासों आदि को न मानने वाले, उनका उल्लंघन करने वाले अथवा हेय समझने वाले अपवित्रजनों को भी पवित्र एवं शुद्ध करके उनका उद्धार करने वाले हो।

करुणा बेली

अहो अकिंचनजन-मन-भावन । भक्तनि-उर आनन्द बढ़ावन॥
दासनि-भीर सदा लागत हौ । अब कछु नाथ ! दूर भागत हौ॥

हे प्रभु! आप तो परम दरिद्रजनों अर्थात् जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनके मन को भी लुभाने वाले हो तथा भक्तजनों के हृदय में आनन्द की वृद्धि करने वाले हो। आप अपने सेवकों पर आयी विपदाओं, विपत्तियों को दूर करने में सदैव उनके परम सहायक रहे हो, किन्तु हे नाथ! ऐसा लगता है कि अब आपने कृपा करने के उस सहज स्वभाव का सर्वथा परित्याग कर दिया है।

जो तुम कहौ करम तुम खोटे । तौ तुम हरि का विधि हौ मोटे॥
करमनि के बस तुव जन होई । तौ तुव भजन करै क्यौं कोई॥

हे प्रभु! यदि आप यह सोचकर कि मेरे कर्म अत्यन्त निकृष्ट कोटि के हैं, मुझे अपना नहीं बना रहे हो, तो हे हरि! इसमें आपका क्या बड़प्पन है? इसमें आपकी बड़ाई की क्या बात है? यदि आप कर्मों के आधार पर ही किसी को अपनापन प्रदान करते हो, तो आपका भजन भला कोई क्यों करेगा?

जो तुम बड़े करम ठहरावौ । तौ तुम क्यौं जग-ईश कहावौ॥
जाकैं दण्ड जगत यह नाँच्यौ । सोई धनी कहावै साँच्यौ॥

करुणा बेली

हे प्रभु ! यदि आप कर्मों को अत्यधिक महत्व प्रदान करते हो, तो आप जगदीश किस प्रकार कहे जा सकते हो ? आपको जगत्पति कहलवाने का क्या अधिकार है ? जो अपने डण्डे के बल पर अर्थात् अपने इशारे पर इस जगत् को नँचा रहा है, वास्तव में उसे ही धनी अर्थात् मालिक कहा जा सकता है।

जो हरि-दास करम-बस कहियैं । तौ प्रभु ! तुमहिं न ऐसी चहियैं ॥
नीति-अनीति आपु ही देखौ । हमकौं याकौ बड़ौ परेखौ ॥

हे प्रभु ! यदि आप ऐसा सोचते, कहते या मानते हैं कि आपका दासत्व प्राप्त करना कर्मों के अधीन है, तो आपका ऐसा सोचना आपको शोभा नहीं देता है, आपकी यह सोच सर्वथा अनुचित है। अब आप स्वयं ही इसका निर्णय करें कि क्या न्याय संगत है और क्या अन्याय पूर्ण ? हमें इस बात की बड़ी चिन्ता है, हमारे मन को तो इसका अत्यन्त खेद, दुःख, विषाद एवं पश्चाताप है।

उत्तम करमनि करि जो तरियैं। तौ तुमकौं काहैं अनुसरियैं ॥
यह हठ छाँड़ि देहु अब हरि! किन । करमनि-लार बहावौ प्रभु ! जिन ॥

हे प्रभु ! यदि अच्छे कर्मों को किये जाने पर ही इस भवसागर को पार किया जा सकता है अर्थात् यदि सत्कर्मों को करने पर ही सद्गति प्राप्त होती है, तो फिर आपका पीछा कोई क्यों ग्रहण करेगा ? हे हरि ! अब

करुणा बेली

आप इस हठ का परित्याग क्यों नहीं कर देते ? हे प्रभु ! अब आप कर्मों को इतना अधिक महत्व देना छोड़ दीजिये।

साधु-सभा के तुम ही मंडन । करौ कटाक्ष कर्म होंहिं खंडन॥
हो ब्रजनाथ ! साथ देहु मेरौ । ऐंचौ पकरि बाँह हौं तेरौ॥

हे प्रभु ! आप तो परम ज्ञानी हो, ज्ञानीजनों की सभा की शोभा हो, उसके शृंगार हो, उनमें मुकुटमणि हो, अतः आप मेरे द्वारा किये गये दुष्कर्मों के प्रभाव का विनाश करने के लिये अपने कँटीले नेत्रों से उन्हें देखने की कृपा करें। हे ब्रजनाथ ! आप मेरी सहायता करें, आप मेरे सहायक बनें तथा अपनी बलशाली भुजाओं से पकड़कर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लें।

हौं भूल्यौ संसार-विषय-वन । भ्रमत फिरौं पाऊँ पीड़ा तन॥
तुम सौ दयाल देखि छिटकावै । कहौ कृष्ण ! को पार लगावै॥

हे प्रभु ! मैं तो आपको भुलाकर अर्थात् आपका स्मरण न करके सांसारिक विषयों के वन में भटकता फिर रहा हूँ, साथ ही मेरा शरीर अनेकानेक कष्टों व पीड़ाओं को भोग रहा है, किन्तु आप जैसा परम दयालु मेरी असहाय अवस्था को देखकर भी यदि मेरी उपेक्षा करेगा, मुझसे पीछा छुड़ाने का प्रयास करेगा, तो हे कृष्ण ! आप ही बताओ कि मुझे इस भवसागर से और कौन पार कर सकता है ?

यह गति देखि जो न कसकै मन। तौ हरि कहा कहायें तो जन॥
अपने कौं स्वामी जो तजिहै। लेहु विचारि कौंन हरि ! लजिहै॥

हे प्रभु ! मेरी ऐसी दुर्गति को देखकर भी यदि आपका मन पसीजता नहीं है, तो हे हरि ! मुझे आपका दास कहलाने का क्या फायदा है, क्या अधिकार है ? यह तो निरर्थक अथवा अर्थहीन ही है। यदि एक स्वामी अपने सेवक द्वारा की जा रही त्रुटियों पर उसका ध्यान आकर्षित न करके, उसे ठीक ढंग से कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करना छोड़ दे, उसे उचित मार्गदर्शन प्रदान न करे, तो हे हरि ! आप ही विचार करके देखो कि किसके लिये लज्जा की बात है।

जो अगतिन की गति नहिं करिहै। कहौ कृष्ण ! को फैंट पकरिहै॥
अब चितवौ रंचक सु दृष्टि करि। अखिल भुवन तौ जाय नाथ तरि॥

हे कृष्ण ! यदि आप उन लोगों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं कराते हो, जिन्हें मोक्ष की प्राप्ति करना अत्यन्त दुर्लभ है, तो आपकी फेंट को पकड़ने का साहस कौंन करेगा ? हे प्रभु ! अब तो मेरा आपसे विनम्र निवेदन है कि आप मुझे अपनी थोड़ी सी कृपा भरी नजरों से देखने का श्रम करें, क्योंकि हे नाथ ! आपकी थोड़ी सी कृपा से ही सम्पूर्ण विश्व का उद्धार हो सकता है।

जाकौ जतन कहा करिवैं है । रंचक दया हृदय धरिवैं है॥
तुम तौ दीनदयाल प्रभू ! अति । हौं हित रूप चरन पाऊँ रति॥

हे प्रभु! आपको मुझ पर अपनी कृपा पूर्ण दृष्टि डालने के लिये कोई विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने हृदय में थोड़ा सा दया का भाव लाकर ही आप इस कार्य को सहज रूप से सम्पादित कर सकते हैं, क्योंकि हे प्रभु! आप तो दीनजनों के प्रति अत्यन्त दया का भाव रखते हो और मुझे भी हित के साक्षात् स्वरूप मेरे पूज्य गुरुवर्य गो. रूपलाल जी महाराज ने अपना बना लिया है, अत: मैं आपके श्रीचरणों की प्रीति प्राप्त करने का उत्कट अभिलाषी बन चुका हूँ।

तुम हरि ! उर आनन्द भरन हौ । भक्तनि की आरति जु हरन हौ॥
अब न गहर कीजै इत देखौ । जैसैं टरै करम की रेखौ॥

हे हरि! आप तो भक्तों के समस्त कष्टों का निवारण कर उनके हृदय को आनन्द से पूर्ण कर देने वाले हो, अत: अब आप अत्यधिक सोच-विचार मत करो और जैसे भी मेरे कर्मों की रेखायें मिट सकती हों अर्थात् जिस प्रकार से भी मेरा दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल सकता हो, वैसा करके मेरी ओर अपनी कृपापूर्ण दृष्टि डालने का अनुग्रह करो।

हो दुख-दमन रसिक राधापति । भक्ति-दान दीजै उदार मति॥
दाता देत कछू नहिं राखै । श्रीगुरु-सन्त-भागवत भाखै॥

हे श्रीराधाबल्लभलाल! आप परम रसिक हो तथा सभी के दु:खों का विनाश करने वाले हो, अत: आप उदारतापूर्वक मुझे अपनी रसदायिनी भक्ति का दान प्रदान करें। सभी महत्‌जनों एवं सन्तजनों के साथ ही श्रीमद्‌भागवत का ऐसा कहना है कि सच्चा दानवीर उसे ही कहा जा सकता है, जो दान करते समय अपना सब कुछ लुटा देता है, यहाँ तक कि वह अपने जीवन-यापन के लिये भी कुछ बचाकर नहीं रखता।

देहु-देहु पद-सेव सदाई । तुम दानी हौ कृपन महाई॥
सब जुग माँहिं विदित यह गाथा । जो अनाथ सो किये सनाथा॥

हे प्रभु! आप तो परम दानवीर हो, अत: आप अपने श्रीचरणों की सेवा का सुअवसर मुझे यथाशीघ्र प्रदान करें, किसी प्रकार का कोई अन्यथा विचार न करें, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आप परम दानवीर होने के साथ-साथ महान कंजूस भी हो। सभी युगों में यह बात अत्यन्त रूप से प्रसिद्ध रही है कि जिनको सहारा देने वाला कोई नहीं होता, उनको आपने सदैव सहारा प्रदान किया है।

तातैं विरद पुरातन गहियैं । तुम सौं बार-बार हरि ! कहियैं॥
वृन्दावन हित रूप रावरे । कब परिहौ मम दृष्टि साँवरे॥

हे हरि! मैं आपसे बार-बार यही निवेदन कर रहा हूँ कि आपकी यश-गाथा, जो प्राचीन काल से चली आ रही है, आप उसे बनाये रखें, उसका परित्याग न करें। चाचा श्रीहितवृन्दावनदासजी कहते हैं कि आप तो हित की मूर्त्ति हो, हित-स्वरूप हो, अतः हे श्याम वर्ण वाले! आप मेरे नेत्रों के समक्ष कब प्रगट होगे?

राधा-रसिक कहावौ नागर । भक्तनि की गति करुना-सागर॥
वरनि सुनाई बेली करुना । अब तौ नाथ ! कृपा दिसि ढरु ना॥

हे नागर शिरोमणि! आप वृन्दावनेश्वरी स्वामिनी श्रीराधा से अनन्य प्रीति करने वाले हो, भक्तजनों के एकमात्र आश्रयदाता हो तथा आपके नेत्रों में करुणा का अथाह सागर भरा हुआ है। मैंने तो आपके नेत्रों से प्रस्फुटित होने वाली करुणा की एक बेली का वर्णन मात्र करके आपके समक्ष प्रस्तुत किया है, अतः हे नाथ! क्या अब भी आप मुझ पर अपनी कृपा-दृष्टि डालने का अनुग्रह नहीं करेंगे?

हौं नहिं लोक भ्रमनि तैं डरौं। एक बात कौ संशय करौं॥
बिसरौ जिन उर तैं भगवन्त। इच्छा बस तन धरौं अनन्त॥

हे प्रभु! मुझे संसार के आवागमन के चक्र अर्थात् बार-बार जन्म लेना और बार-बार मरना – इस बात का कोई भय नहीं है। मैं आपकी इच्छा के अनुसार चौरासी लाख योनियों में अनन्तानन्त शरीर धारण करने के लिये भी तैयार हूँ, किन्तु मुझे एक बात का सन्देह अवश्य है कि हे भगवन्! कहीं ऐसा न हो कि आप अपने हृदय से मुझे भुला दें अथवा मैं अपने हृदय में आपका स्मरण करना भूल जाऊँ।

जो कोउ जाकी सरनी आवै। जदपि औगुनी दण्ड न पावै॥
अहो सरनागत-पालक गिरिधर। अब मो लाज राखि सुन्दरवर॥

हे प्रभु! यदि एक व्यक्ति, जो अवगुणों से भरा हुआ है, किसी अन्य व्यक्ति की शरण ग्रहण कर लेता है, तो शरण में लेने वाला व्यक्ति शरणागत व्यक्ति के अवगुणों पर कोई ध्यान न देते हुए, उसे कोई दण्ड का प्रावधान नहीं करता, अपितु उसका पालन-पोषण एवं उसे अपना संरक्षण प्रदान करता है। हे गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले गिरधारी! आप तो शरण में आये हुए जनों का पालन-पोषण करने वाले हो, अतः हे सुन्दरवर! अब आप मेरी लाज बचाने की अहेतुकी अनुकम्पा करें।

सती चढ़ी सर अगनि न जारै । कहौ नाथ ! वह कहाँ पुकारै॥
प्यासे कौं जल नदी न देई । तौ हरि ! कहौ कौंन सुधि लेई॥

हे नाथ! यदि एक स्त्री, जिसने अपने जीवन में पतिव्रत धर्म का पूर्ण रूप से पालन किया है, पति के मरने पर स्वयं का अस्तित्व मिटा देने के लिये, उसके साथ उसकी चिता पर बैठ गयी हो, किन्तु चिता की अग्नि उसे जलाकर राख नहीं करती, तो वह स्त्री उसे भस्मीभूत करने के लिये किसको पुकारेगी? यदि प्यास से व्याकुल एक व्यक्ति अपनी प्यास को शान्त करने के लिये किसी तरह नदी के किनारे तक तो पहुँच जाता है, किन्तु नदी उसे जल लेने से मना कर दे, तो हे हरि! उस व्यक्ति की प्यास को कौंन बुझायेगा?

प्रफुलित कमल रोष रवि ठानैं । यह दुख वारिज कहाँ वखानैं॥
चन्द्र चकोरनि तैं दुरि रहिहै । हो हरि ! व्यथा कहाँ वह कहिहै॥

हे प्रभु! यदि सूर्य क्रोधित होकर कमल को विकसित होने से रोकने का प्रयत्न करे, तो वह कमल अपने दु:ख को दूर करने के लिये किससे निवेदन करेगा? यदि चन्द्रमा चकोर पक्षियों को दिखाई न दे, अपने आपको उनसे छिपाकर रखे, तब हे हरि! वे चकोर अपनी विरह व्यथा को किससे कहेंगे?

दीपक मन्दिर हरै न तम कौं। तौ प्रभु ! तुम बिसरावौ हमकौं॥
जो जल काठ न तरै गुसाँईं। तरुवर बैठनि देय न छाँईं॥

हे प्रभु! यदि ऐसा सम्भव हो कि दीपक की प्रज्वलित लौ घर के अन्धकार को दूर न कर सके, तो आप भी हमको विस्मृत कर सकते हैं, किन्तु ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं है, अतः आपके द्वारा भी हमें भुलाना सम्भव प्रतीत नहीं होता। हे गुसाँईं! क्या ऐसा होना सम्भव है कि काठ का छोटा सा टुकड़ा पानी में तैर न सके तथा वृक्ष अपनी छाया में किसी को न बैठने दें?

सुनौ प्रानपति ! तौ कहा बस है। जोपै उन मन धर्‌यौ विरस है॥
ये व्रत तजैं तौ अचरज नाहीं। पै न संभवै प्रभु ! तुम माँहीं॥

हे प्राणबल्लभ! जैसा कि ऊपर कहा गया है, यद्यपि वैसा होना प्रायः असम्भव ही है, फिर भी हो सकता है कि ऐसा सम्भव बन पड़े, यदि उन्होंने ऐसी अनहोनी को करने का विचार अपने मन में दृढ़तापूर्वक कर लिया है, इसमें कोई क्या कर सकता है? इनके अपने व्रत को छोड़ देने में कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है, किन्तु हे प्रभु! आपके द्वारा असहाय, असमर्थ, अकिंचन जनों पर करुणा करने एवं कृपा करने की अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह न करना विल्कुल असम्भव ही है।

अहो कृष्ण ! अब करौ न ऐसी । जैसैं तुम जु विचारौ तैसी॥
नैंक सु दृष्टि करौ मम ओरी । कारज होइ बात यह थोरी॥

हे कृष्ण ! अब आप अपनी करुणा करने की, दया करने की, कृपा करने की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा से डिगने का विचार अपने मन से निकाल दें, जैसा कि मुझे अपनी बारी आने पर अनुभूत हो रहा है। आप तो मेरी ओर अपनी थोड़ी सी सुन्दर दृष्टि डालने की अहेतुकी अनुकम्पा करें, जिससे कि मेरी मनोकामना पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हो सके, वस्तुतः आपके लिये तो यह एक बहुत छोटी सी बात है।

हे बलवीर ! धीर मति पन के । रक्षक सदा आपुने जन के॥
त्राहिमाम सरनागति आयौ । त्यागु न उचित जु भृत्य कहायौ॥

हे बलवीर ! आपने तो धैर्यपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा के पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया हुआ है तथा अपने आत्मीयजनों की संरक्षा एवं सुरक्षा में आप सदैव तत्पर रहते हो, अतः इस घोर संकट से मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो, क्योंकि अब मैं आपकी शरण में आ चुका हूँ तथा शरण में आये हुए सेवक का परित्याग करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

सुनौ कान दै कानन-वासी । अब जिन जगत करावौ हाँसी ॥
तुम जु ज्ञान घन त्रिभुवन-ईशै । अभय कर-कमल धरौ मम सीसै ॥

हे वृन्दा-कानन में नित्य निवास करने वाले! आप मेरी प्रार्थना अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें तथा संसार में मुझे अब हँसी का पात्र न बनायें। आप तो ज्ञान के भंडार हो, तीनों लोकों के स्वामी हो, अत: अपने हस्त-कमल को मेरे सिर के ऊपर रखकर मुझे अभयदान प्रदान करने की अहेतुकी अनुकम्पा करें।

मैं विनती प्रभु! करी घनेरी । कही रुचि दैंनी प्रेम-पहेरी ॥
सुनिकैं नाथ! धरौ मन माँहीं । जैसैं पर्‌यौ रहौं पद-छाँहीं ॥

हे प्रभु! मैंने अनेकानेक भाँति से अपनी प्रार्थना आपके समक्ष प्रस्तुत की है। इस प्रेम भरी पहेली को कहकर मैंने आपके मन में रुचि उत्पन्न करने का प्रयास किया है। हे नाथ! इसे सुनकर आप इसे अपने मन में स्थान प्रदान करें और मुझे अपने श्रीचरणों की छत्र-छाया में पड़े रहने का सुअवसर यथाशीघ्र प्रदान करें।

तुम लाइक दाइक सबही सुख । दरसावौ काहे न सुन्दर मुख ॥
पाऊँ यह प्रसाद शोभा-धर । ब्रजपतिनन्दन हो राधावर ॥

हे प्रभु! आप सर्वशक्तिमान हो, सर्वगुणसम्पन्न हो और सर्वसुखदाता हो, फिर भी आप मुझे अपने

परम सुन्दर श्रीमुख के दर्शन-लाभ से लाभान्वित क्यों नहीं कर रहे हो? हे ब्रजपतिनन्दन! हे श्रीराधाबल्लभलाल! आप परम शोभासम्पन्न हो, अतः आप मुझे अपने दर्शन का प्रसाद देकर मेरे हृदय की उत्कट अभिलाषा को पूर्ण करने की अहेतुकी अनुकम्पा करें।

दोहा—

श्रीहरिवंश-प्रताप तैं, वरनी करुना-बेलि।
ब्रजभूषन राधा धनी, दरसावौ रस-केलि॥

चाचा श्रीहितवृन्दावनदासजी कहते हैं कि श्रीहरिवंशचन्द्रजी के परम प्रताप से मैं करुणा की इस बेलि की रचना करने में पूर्ण समर्थ हो सका हूँ। वे श्रीहितप्रभु, ब्रजभूषण श्रीश्यामसुन्दर और स्वामिनी श्रीराधिका रूपी परम धन के एकमात्र धनी हैं, अतः मेरी उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वे मुझे अद्वय युगल श्रीश्यामा-श्याम की रसमय केलि के दर्शन का लाभ प्रदान करके मुझे सौभाग्यशाली बनाने की कृपा करें।

सम्वत सै दस आठ गत, चारि वरष उपरन्त।
कृष्णदास अभिलाष हित, कथी सुनौ हरि-सन्त॥

चाचा श्रीहितवृन्दावनदासजी कहते हैं कि श्रीकृष्णदासजी की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये मैंने

इस करुणा बेली की रचना विक्रम संवत् अठारह सौ चार में की है। इस करुणा बेली को श्रीहरि एवं सभी सन्तजन पूर्ण मनोयोग के साथ श्रवण करें।

जेठ बदी पाँचैं सु दिन, बलि हित रूप विचार।
हरि-गुरु-साधु कृपा करी, वरन्यौं यह सुख-सार॥

चाचा श्रीहितवृन्दावनदासजी कहते हैं कि जिस दिन यह रचना पूर्ण हुई उस दिन ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी का शुभ दिन था। मैं श्रीकृष्णदासजी द्वारा प्रेरित इस परम कल्याणकारी सद्विचार की बार-बार बलिहारी लेता हूँ। श्रीहरि, गुरुजनों एवं साधुजनों की कृपा के फलस्वरूप ही मैं समस्त सुखों की सार स्वरूपा इस करुणा बेली की रचना कर पाया हूँ।

दीनबन्धु करुना-अवधि, भक्तबछल यह नाम।
वृन्दावन हित लेहु सुधि, विरद बढ़ै ज्यौं श्याम॥

हे प्रभु! आपको दीनबन्धु, करुणानिधान, भक्तवत्सल आदि-आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। चाचा श्रीहितवृन्दावनदासजी कहते हैं कि हे श्यामसुन्दर! आप मेरी सुधि लेने की भी कृपा करें, जिससे कि आपके सुयश की उत्तरोत्तर वृद्धि हो सके।

॥ इति श्रीकरुणा बेली चाचा श्रीहितवृन्दावनदासजी कृत संपूर्ण॥